International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 21-12-2022, Accepted: 07-01-2023, Published: 23-01-2023
Volume 9, Issue 1, 2023, Page No. 17-20

मैथिलीशरण गुप्त के एवं रामधारी सिंह के काव्य में राजनीतिक सांस्कृतिक, साहित्यिक परिस्थितियाँ

डॉ. तबस्सुम खान, वरूण कुमार
श्री सत्य सांई विश्वविद्यालय, सीहोर, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
सारांश में यह कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त का स्वतन्त्रता संग्राम एवं क्रांति में प्रत्यक्ष रूप से योगदान रहा। उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने आन्दोलन में ही केवल भाग नहीं लिया, अपितु अपनी रचनाओं के द्वारा भी वे राष्ट्र सेवा करते रहे। उस समय के अनेक राष्ट्र कवि एवं समाज सेवक कवि के कार्य से प्रभावित होकर उनकी ओर आकृष्ट होते रहे।

मूल शब्दः मैथिलीशरण गुप्त, स्वतन्त्रता संग्राम, सुसंस्कृत सामाजिक

राजनीति समाज को निरन्तर प्रभावित करती रहती है। समाज में क्रांति एवं जागृति निर्माण करने वाले, एक शक्तिशाली हथियार के रूप में उसका पुरातन काल से उपयोग होता आ रहा है। साहित्यकार एक सुसंस्कृत सामाजिक प्राणी होने के कारण वह अपनी सभी परवर्ती परिस्थितियों से प्रभाव ग्रहण कर समाज के सम्मुख एक आदर्श निर्माण करने का प्रयत्न भी करता है। मैथिलीशरण गुप्त का युग राजक्रांति का युग था। अतः राजनीति का भी उन पर व्यापक प्रभाव होना स्वभाविक ही था।

गुप्त जी के काव्य में जो राष्ट्रीय चेतना प्रमुख रूप में व्यक्त हुई है उसका मुख्य कारण उस समय का क्रांतियुग ही था। उनके समय अंग्रेजी राज्य की स्थापना हो चुकी थी। अंग्रेजों ने अपनी वणिक वृत्ति द्वारा सम्पूर्ण भारत पर अपना अधिकार जमा लिया था। वास्तविक रूप में हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का आरम्भ भारतेन्दु से ही हुआ था। उन्होंने अंग्रेजों की कूटनीति एवं वणिक वृत्ति पर घोर आघात किया था। उस प्रभावी चेतना को लेकर कविवर मैथिलीशरण गतिशील बने थे। सन् 1914 ई0 के प्रथम विश्व युद्ध का प्रभाव कवि के जीवन पर पड़ा।

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति भी गुप्त जी के जीवन में अत्यन्त प्रभावी सिद्ध हुई है। गुप्त जी ने अपने युग के विकासशील राजनीतिक चेतना को ग्रहण किया है। उसके प्रति वह अत्यन्त संवेदनशील रहे हैं। उनकी आरम्भिक राष्ट्रवादी काव्य प्रवृतियाँ राजनीतिक एकता के प्रतिक ब्रिटिश शासन की आशंका और उसकी अकल्याणकारी कार्य पद्धति की आलोचना के रूप में अभिव्यक्त हुई उनका आरम्भिक स्वरूप हिन्दू राष्ट्रवाद से निर्मित हुआ और वह क्रमशः कांग्रेस की राजनीति में आ गये। तत्पश्चात् वह कांग्रेस की राजनीति और गाँधी जी के राजनीतिक आदर्शों से शक्ति संचय करता रहा और अंत में विश्व जनतन्त्र का समर्थक बना। मार्क्सवादियों की भांति गुप्त जी ने जीवन के आर्थिक पक्ष को, सर्वोदयवादी समस्त सिद्धान्त के अतिरिक्त, अपने राजनीतिकचिन्तन का विषय नहीं बनाया।[7] उनकी राजनीतिक चेतना में प्रमुखता उनका राष्ट्र प्रेम ही व्यक्त हुआ है। हिन्दुत्व की पीठिका के फलस्वरूप ही उनका राष्ट्र प्रेम दिन प्रतिदिन प्रबल होता गया।

इसी समय गाँधी जी ने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया था, जिससे देश की राजनीतिक चेतना में एक युगान्तकारी परिवर्तन हुआ और देश प्रेम की भावना अधिक प्रज्जवलित हो उठी। मैथिलीशरण गुप्त भी इस परिवर्तन से इतने प्रभावित हुये कि उनका काव्य कांग्रेस की विचारधारा एवं गाँधी जी के आदर्शों के अत्यधिक समीप आया। उस समय की गुप्तजी की कविताओं ने समाज में एक नयी जागृति निर्मित कर दी। उनकी राष्ट्रीय भावना प्रज्जवलित होकर इनका क्षेत्र विशाल एवं व्यापक बन गया। गुप्त जी की व्यापक राष्ट्र–भावना से अभिप्राय–सांस्कृतिक मनोभावना से है, क्योंकि देश भक्ति प्रेरणा से कवि ने अपने स्वतंत्र प्रेम, पुनरूत्थान की भावना और राष्ट्र निर्माण एवं विश्व कल्याण की निष्ठा को अभिव्यक्त किया है।

गुप्त जी जिस समय अवतरित हुये थे, उसी समय अंग्रेजों का शासन पूर्ण रूपेण स्थापित हो चुका था। राजनीतिक क्षेत्र में उस समय कांग्रेस ही एक ऐसा पक्ष था जो उस समय के शासन के दमन चक्र के विरुद्ध आन्दोलन कर रहा था।[8]

भारतवासी गांधी जी के नेतृत्व में कार्य कर रहे थे। गाँधी जी अपने शान्ति अहिंसा, आदि सिद्धांतों का प्रचार–प्रसार कर रहे थे। भारतीय समस्त जनता गाँधी जी के प्रभाव से प्रेरित होकर अंग्रेजों के विरुद्ध कार्य करने में लगी हुई थी। भारतवासी विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करते हुए भारत सरकार से सभी प्रकार के असहयोग कर रहे थे।

सन् 1905 ई0 बंग–भंग आन्दोलन का अत्यधिक प्रभाव लोगों पर पड़ा और राष्ट्रीय चेतना का तीव्र प्रवाह समस्त भारत में व्याप्त हो गया। तत्कालीन नेताओं में लोक मान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष आदि के प्रयत्नों एवं भाषणों से राष्ट्रीय चेतना और स्वतन्त्रता की भावनाओं की विशेष पुष्टि प्राप्त हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध तक देश में स्वतंत्रता प्राप्ति का जोर पर्याप्त मात्रा में बढ़ चुका था और अंग्रेजों से आश्वासन भी लिया गया था। परन्तु युद्ध की समाप्ति पर जब कुछ भी न मिला, तब बंगाल और पंजाब में क्रांतिकारी आन्दोलन प्रारम्भ हो गये। आन्दोलन का प्रभाव इतना बढ़ गया था कि बम और पिस्तौल की सहायता से अंग्रेजों के खिलाफ कार्यवाही करने में वे इतने आगे बढ़ रहे थे कि पीछे हटने का नाम ही नहीं था। एक ओर गाँधी जी ने 'सविनय अवज्ञा' आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था, जिससे स्थान–स्थान पर कानून भंग करके सत्याग्रह होने लगे। परिणामस्वरूप अन्त में सन् 1947 ई0 में अंग्रेजों ने भारत छोड़ दिया और भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। स्वाधीनता के पश्चात् राजनीतिक क्षेत्र में दिन प्रतिदिन विकास होता गया और प्रत्येक भारतवासी स्वतन्त्र नागरिक के नाते विचरने लगा।

गुप्त जी के मन पर राजनीतिक परिस्थिति का ऐसा परिणाम हुआ कि वे बेचैन हो उठे। इसके पूर्व वे गाँधी जी के संपर्क में आये थे। अतः परिणामस्वरूप कवि स्वतन्त्रता संग्राम में उतर पड़े। अपने काव्य द्वारा ही वे संग्राम में मुकाबला करने लगे। इतना नहीं उनका काव्य ही अंग्रेजों की दमन नीति का एकमेव हथियार के रूप में उपर्युक्त सिद्ध हुआ। स्वाधीनता के आन्दोलन में उनका मुख्य कार्य था काव्य के द्वारा जन जागृति करना। गुप्त जी

सर्वप्रथम सन् 1912 ई0 में 'भारत–भारती' लिखकर देशवासियों का ध्यान उनकी दुर्दशा की ओर आकृष्ट किया और अतीत के गौरवमयी झांकी प्रस्तुत करके उन्होंने उन्हें पराधीनता के बन्धनों से मुक्त होने के लिए प्रोत्साहित किया। तत्पश्चात् उन्होंने जो भी रचनाएँ लिखी उसमें जन जागृति की प्रेरणा थी।

गुप्त की सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

गुप्त जी भारत की उन महान विभूतियों में से हैं, जिन्होंने भारतीय जीवन को समग्र दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। वे भारतीय समाज के अन्तर्दृष्टा और संस्कृति के आख्याता है। उनका जीवन हिन्दू–आर्य का जीवन है। अतः उनके द्वारा गृहीत संस्कृति भी मुख्यतः आर्य–हिन्दु संस्कृति है।

'संस्कृति' शब्द संस्कार से बना है। संस्कार शब्द किसी विकृत वस्तु को सुधारने, संभालने, परिष्कृत करने, उत्तम बनाने या संशोधन करने के अर्थ में आता है। इसी तरह 'संस्कृति' में भी संस्कारों के बीज बोने, उन्हें उगाने, उनको बड़ा करने आदि के कार्य होते हैं ताकि देश और समाज का विकास हो सके।

भारतीय 'संस्कृति' संस्कृतियों के सम्मिश्रण से बनी हुई संस्कृति है। भारतीय संस्कृति की इस अखंड धारा में आकर विभिन्न संस्कृतियों की सरितायें मिली अवश्य है, परन्तु वे इसमें आकर ऐसी विलीन हो गई कि आज उनका स्वतन्त्र अस्तित्व कहीं दिखाई नहीं देता है और सम्मिश्रण होने पर भी भारतीय संस्कृति अपने मौलिक एवं अपरिवर्तित रूप में विद्यमान है।

गुप्त जी वैष्णव भक्त कवि हैं। उनके द्वारा भारतीय संस्कृति को स्वर मिला है, परन्तु उनकी भारतीय संस्कृति का अभिप्राय हिन्दू–संस्कृति है यह हिन्दू संस्कृति वेद पुराण, रामायण, महाभारत, स्मृति शास्त्र पर आधारित है। गुप्त वंश के राज्यकाल में यह अपनी पूर्ण विकास अवस्था को प्राप्त थी। श्री रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में, ''गुप्तकाल तक आते–आते हिन्दुत्व का पूरा विकास हो गया और उसके वे सारे अंग है, उसके जो भी प्रधान लक्षण और विशेषताएँ हैं, वे गुप्तकाल तक बढ़कर तैयार हो गयी। इसके बाद हिन्दुत्व के निर्माण में कोई ईंट नहीं लगी कहीं से भी उसने कोई बड़ा उपकरण नहीं लिया।[9]

गुप्त जी के संस्कार परम्परानिष्ठ हिन्दू के संस्कार हैं। वह उस परिवार के सदस्य हैं, जिसमें हिन्दुत्व को समग्रता के साथ स्वीकार किया गया है। मनोविज्ञान के अनुसार शिशु पर माता–पिता की रूचि–अरूचि तथा जाति व समाजगत चेतना व धार्मिक आचरणों का सहज ही प्रभाव पड़ता है। इसलिए गुप्त जी ने अपनी जाति और सामाजिक परम्पराओं तथा धार्मिक आस्थाओं को दाय के रूप में प्राप्त किया। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उनके पिता द्वारा संग्रहित धार्मिक विशेषकर रामचरित सम्बन्धी पुस्तकों के स्वध्याय के रूप में हुई। कवि ने अनुभव किया था कि राम सम्बन्धी विश्वास ही जन प्रचलित एवं सामान्य विश्वास है। इस सामान्य स्वीकृति एव व्यापकत्व ने उकनी पनपती हुई श्रद्धा समन्वित सौन्दर्य भावना और नैतिक चेतना को और भी दृढ़ बना दिया। परिणाम स्वरूप मैथिलीशरण जी का व्यक्तित्व राममय बन गया तथा हिन्दुत्व अपने समग्र रूप में उनके रग–रग में छा गया। गुप्त जी का परिवार संयुक्त परिवार था और वर्णाश्रम धर्म का अनुयायी भी। शासन व्यवस्था की दृष्टि से गुप्त जी राजतंत्र को श्रेष्ठ समझते थे।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि गुप्तजी का युग सांस्कृतिक जागरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है। इस सबका समग्र प्रभाव उनकी साहित्य यात्रा पर सतत् पड़ा।

दिनकर की रचनाकालीन परिस्थितियाँ

दिनकर का काव्य जगत् में पदार्पण अपने आप में न केवल एक ऐतिहासिक घटना अपितु वर्ण इतिहास है। दिनकर की साहित्य जगत् में महत्पवूर्ण उपलब्धियाँ हैं। लेकिन इस चिरन्तन रचना संसार के पीछे अनेकों ऐसी स्थितियाँ हैं, परिस्थितियाँ हैं जो कभी दिनकर के साहित्य सृजन का आधार बनी, कभी प्रेरणा बनी, कभी प्रतिक्रिया बनी परन्तु इन सबने जिन रचनाओं को जन्म दिया वह निःसन्देह साहित्य की ही नहीं, अपितु समग्र साहित्य की अक्षत निधि है।

साहित्य सदैव से समाज का गवाह बना है, और समाज सदैव एक सा नहीं रहता कभी इतिहास की घटनाएँ, कभी सामाजिक परिवर्तन, कभी राजनीतिक उतार चढ़ाव चलते रहते हैं। इसीलिए समाज को न केवल एक वातायन से और न केवल एक दृष्टि से देखा जा सकता है, अपितु विविध रंग स्थितियां ही हर रचनाकार के काव्य प्रबन्ध का आधार बनती हैं। दिनकर जीवन के 65 वर्ष तक जीवित रहे। बाल्यावस्था के आर्थिक संघर्षों ने, युवावस्था में संकल्पात्मक लक्ष्य की ओर उन्मुख किया तथा प्रौढ़ता की ओर पर्दापण करते–करते अनके प्रकार के यश उपाधियाँ और सम्मान प्राप्त किए और जिस साहित्य को जन्म दिया वह भी उनके जीवन की भांति एक सा नहीं।

काव्य जगत में पदार्पण राष्ट्रीय विभिषिकाओं से हुआ जो युद्ध विषयक दर्शन में परिवर्तित हो गया। युद्ध की समस्या को शान्ति में खोजना चाहा तो गाँधीमय हो गया परन्तु तीन पड़ाव ही दिनकर के रचना सोपान नहीं हैं। इस बीच और भी बहुत कुछ रचा गया जिसके पीछे अंग्रेजों की खिलाफत, सत्याग्रहियों के आन्दोलन, विश्वयुद्धों की परिस्थितियों और ऐसे में यौवन काल में प्रेम का उन्मेष इत्यादि विविध स्थितियाँ दिनकर के काव्य के विविध रचनात्मक संदर्भ हैं।

दिनकर की साहित्यिक परिस्थितियाँ

दिनकर के काव्य क्षेत्र में जब पर्दापण किया तो भारत का स्वतन्त्रता आंदोलन अपने चरम पर था। सभी देशवासी जननी–जन्मभूमि को पराधीनता के बन्धन से मुक्त कराने को विकल थे। देशवासी नित नये बलिदान दे रहे थे। झांसी का ''असहयोग आन्दोलन'' भारतीयों के जीवन में नई आशा और नई चेतना का संचार कर रहा था। चारों तरफ क्रान्ति बलिदान और विद्रोह का स्वर गूंज रहा था।

आज़ादी के दीवाने हँसते–हँसते फांसी पर चढ़ जाना सौभाग्य समझने लगे थे। सारा देश स्वतंत्रता के लिए जूझ रहा था। इन विकट परिस्थितियों में कोई भी संवेदनशील कलाकार स्वयं को असम्पृक्त नहीं रख सकता। इन परिस्थितियों से दिनकर के मानस का अदम्य विद्रोह कविता का माध्यम बनकर फूट पड़ा। दूसरे कवियों और लेखकों की तरह दिनकर भी राष्ट्रपरक रचनाओं में प्रवृत्त हो गए। दिनकर के लेखन कार्य में प्रवृत्त होने के समय हिन्दी जगत् में एक शुद्ध राष्ट्रीय वातावरण बन रहा था। इस वातावरण में रहकर 'दिनकर' की कविता क्रान्ति एवं आग उगलने लगी।

दिनकर जी को छायावादोत्तर कवि कहा जाता है चूँकि छायावाद दिनकर को अपनी ओर आकृष्ट न कर सका वे उस परम्परा से हटकर रचनाएँ करते रहे। छायावाद से उस स्वतन्त्रता–आन्दोलन के वातावरण में जनता निराश होने लगी थी। निराशा के कुछ खास कारण थे–जनता स्वाधीनता के लिए प्राणोत्सर्ग कर रही थी, पूँजीवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध थी और छायावादी कवि कल्पना से खेल रहा था, रहस्य दुःख, विषाद, प्रेम, निराशा और विरह में भटका था। ''छायावादी युग में पाठकों के बीच हिन्दी कविता को बहुत कुछ प्रतिष्ठा राष्ट्रीय कविताओं में रखी।''[10]

दिनकर ने छायावादी प्रवृति से अलग उठकर शोषण, उत्पीड़न, साम्राज्यवाद, सामाजिक कुरीतियों और सबसे बढ़कर पराधीनता के विरुद्ध आवाज उठाई। वे लिखते हैं कि ''मेरी वेदना अभिव्यक्ति की वेदना थी। अनुभूतियाँ और भाव तो मुझे छायावादियों के भी अच्छे लगते थे, किन्तु अभिव्यक्ति की सफाई

में, वह चाहता था, जो मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी में निखरी थी।''[11]

दिनकर जी छायावादी शैली को पलायनवाद का पर्याय मानते थे। उन्होंने रसवन्ती की भूमिका में लिखा है–''साहित्य की जो कृतियाँ वर्तमान जीवन के दाह और दुःखों से उदासीन है, जूझते हुए सूरमाओं की पदरज लेने में शर्माती हैं, और मिट्टी की गंध से निर्लिप्त रहने पर दंभ रचती है, वे मृत हैं, वे कृतघ्न हैं और संसार को उनसे प्रतिशोध लेने का अधिकार है।[12]

दिनकर समिष्टि–हित नूतनता, मौलिकता गतिमयता और राष्ट्र के प्रति जागरूकता चाहते थे उनकी मुख्य चेतना क्रान्ति की थी और यही क्रान्ति चेतना ''रेणुका'' से लेकर ''परशुराम की प्रतीज्ञा'' तक में प्रवाहित रही।

दिनकर के काव्य में संवेदना और विचार का अत्यन्त सुन्दर समन्वय था। उनकी राष्ट्रीय और सौन्दर्य बोधात्मक सभी कविताएँ संवेदना से युक्त है। उनमें अपने परिवेश से जुड़ने की तड़प थी। युगजन्य कुण्ठा, अवसाद, निराशा से अविचल रह उन्होंने अपने काव्य में सौन्दर्य और स्वस्थ मानवीय प्रतिक्रियाओं को स्थान दिया। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक परिवेश को एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में सांस्कृतिक धारा से जोड़ते हुए प्राचीन जीवन मूल्यों का नये जीवन मूल्यों के साथ सामंजस्य स्थापित किया।

दिनकर की भारतीय आत्मा उनके काव्य में अन्त तक परिलक्षित होती है। वे मुख्यतः ओज और पौरूष के कवि थे परन्तु अपने साहित्य का बार–बार आत्मालोचन एवं परीक्षण करके उन्होंने अपने पड़ावों को बदला भी है। दिनकर न तो व्यक्तिवादी थे और न ही प्रगतिवाद से जुड़ पाए। वे इन दोनों धाराओं के मध्य नहीं थे। कहीं वे गाँधीवादी, कहीं सशस्त्र क्रांतिकारी, कहीं प्रकृति और नारी प्रेम के उन्मुक्त चरण के पक्षपाती और कहीं सर्वहारा के मंगल भविष्य के आकांक्षी थे। समय की मांग के साथ ही दिनकर की कविताओं और मान्यताओं में परिवर्तन आता रहा है।

दिनकर ने अपने देश और समाज को यथार्थ की आँखों से देखने का प्रयास किया। इस प्रकार दिनकर ने अपने काव्य में समसामयिक समस्याओं का यथार्थमूलक चित्रण किया और देश व समाज की अभिशप्त जिंदगी का दर्द कवि का अपना दर्द बन गया है। दिनकर की साहित्यिक सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप उन्हें राष्ट्रपति द्वारा पद्यभूषण की उपाधि प्रदान की गई। सन् 1962 में भागलपुर विश्वविद्यालय ने उन्हें डॉक्टर ऑफ लिट्रेचर की उपाधि दी। इसके अतिरिक्त समय–समय पर भारत सरकार, उत्तर प्रदेश सरकार, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी साहित्यकार संसद, इलाहाबाद, तथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना द्वारा अनेक पुरस्कार उनको प्राप्त हुए। नागरी प्रचारिणी सभा का द्विवेदी पदक उन्हें दो बार मिला। पहला 'कुरूक्षेत्र' के लिए दुसरा 'रश्मिरथी' के लिए। 'कुरूक्षेत्र' पर साहित्यकार संसद, प्रयाग द्वारा पुरस्कृत किए जाने के अवसर पर सन् 1949 ई0 में प्रयाग की मांग पर साकेत भूमि पर साहित्यिकरों द्वारा सम्मान–समारोह का आयोजन किया गया। इसी अवसर पर इन्हें इलाहाबाद की 'परमिल' की ओर से अलग मानपत्र भी दिया गया था।

दिनकर की राजनीतिक परिस्थितियाँ

दिनकर का जब साहित्यिक पद आगमन हुआ तो विश्वयुद्धों का समय था। अंग्रेजों के अधिकार से आक्रांत होने से पूर्व भारत जीवन की प्रत्येक दिशा में उन्नत प्रमाणों का स्पर्श कर रहा था। प्राचीन भारत अध्यात्म, कला, साहित्य, विज्ञान एवं शिक्षा सभी क्षेत्रों में संसार के किसी भी अन्य देश से पीछे नहीं था। प्रारम्भ से ही भारत में साम्राज्य शक्ति की एक ऐसी सुदृढ़ परम्परा चली आ रही थी, जिसने भारत की समस्त जनता को, कई प्राकृतिक विभिन्नताओं के बावजूद, एकता के सूत्र में बांध रखा था।

सन् 1914 के प्रथम विश्वयुद्ध में भारत ने अंग्रेजों की पूरी सहायता की। भारत से लगभग 14 लाख सेना यूरोपीय और मध्यपूर्व के युद्ध क्षेत्रों में लड़ने के लिए गयी जो ब्रिटेन अपनी साम्राज्यवादी नीति से भारत का निरन्तर शोषण कर रहा था, उसी की सहायता भारत ने लगभग पौने दो अरब रुपये नकद खर्च, सवा दो अरब रुपये युद्ध के लिये ऋण तथा चार अरब रुपये सामग्री के रूप में किया था। इस उन्मुक्त एवं उदार सहयोग के पीछे ब्रिटिश, न्यायप्रियता में भारतीयों का अटल विश्वास निहित था। परन्तु इस विश्वास, सहयोग और बलिदान का पुरस्कार भारत को चौमुखी दमन के रूप में मिला। जनता के प्राथमिक तथा राजनैतिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाया गया। इस राजनैतिक असफलता ने समस्त भारत को अंग्रेजों के विरुद्ध कर दिया और देश को विभिन्न आंदोलनों का सामना करना पड़ा। 1937 में कांग्रेस ने चुनाव में भाग लेकर अपना मन्त्री मण्डल भी बनाया परन्तु उसके संकल्प के प्रतिकूल भावना होने के कारण किसान संगठन मजबूत हुए और उन्होंने आन्दोलन किए। 1938 के बाद तो नई–नई मजदूर संस्थाओं का जन्म हुआ और आन्दोलनों की बाढ़ सी आ गयी।

1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया, जो सितंबर 2, 1945 को टोक्यो की संधि से समाप्त हुआ। इस युद्ध से रूप उत्पीड़न का विरोधी एवं शोषितों के रक्षक के रूप में विश्व में प्रतिष्ठित हुआ। ;भारत में समाजवादी विचारधारा के अधीन 1939 में भारतीयों का कम्युनिस्ट रूप पैदा हो चुका था तथा 1936 में कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा एक साहित्यिक मोर्चा प्रगतिशील लेखक संघ के नाम से गठित हो चुका था।

रूस की विजय एवं चीन में जनवादी सरकार की स्थापना से समाजवादी दृष्टिकोण को और शक्ति मिली और विश्व का समाजवाद पर विश्वास और गहरा हो गया और गुलाम पराधीन एवं शोषित देश साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद से मुक्ति पाने के लिए सन्नद्ध हुए।[13] 1940 से मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की मांग की मो0 जिन्ना के नेतृत्व में सरकार के समक्ष रखा एवं भारत के दो बड़े सम्प्रदायों में घृणा, संदेह एवं द्वेष का बीजारोपण कर दिया। 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव पारित हुआ। सरकार ने नृशंस दमन चक्र चलाया एवं दूसरे दिवस प्रातः ही सभी बड़े नेताओं को हिरासत में ले लिया।

इसकी जनता में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। इस क्रांति की व्यापकता एवं उग्रता का अनुमान केवल इस तथ्य से लगाया जा सकता है, कि लगभग दो लाख

आदमियों को इस महान् क्रांति में दण्ड दिया गया।[14] 1943 में बंगाल अकाल तदोपरान्त भीषण महामारियाँ एवं आजाद हिन्द फौज के नेताओं पर अभियोग ने भारतीय जन आक्रोश में जलती पर घी का सा काम किया। 1943 में संविधान सभा में कांग्रेस की आशातीत सफलता से जिन्ना की सीधी कार्रवाई की घोषणा से साम्प्रदायिक दंगे हुए एवं कलकत्ता में 3000 से अधिक हिन्दू मारे गए।[15] इससे साम्प्रदायिकता का विष और कटुता फैली एवं कलकत्ता के इस नर संहार का बदला हिन्दुओं ने बिहार में लिया। फिर फरवरी 1947 में इटली ने भारत को स्वतन्त्र करने की घोषणा की। परन्तु 15 अगस्त 1947 को भारतीय स्वतन्त्रता की घोषणा से पूर्व 3 जून 1947 को ब्रिटिश सरकार द्वारा पाकिस्तान की मांग मानने एवं देश के विभाजन में हुए। 11 करोड़ 500000 लोगों के विस्थापन एवं इनके शरणार्थी बनने तथा उनपर हुए मानवीय अत्याचारों की भयावह स्मृतियों ने साम्प्रदायिक घृणा एवं द्वेष की ज्वाला को और प्रचण्ड किया, हर कोई बदला चाहता था। पाकिस्तान द्वारा कश्मीर पर आक्रमण ने दोनों नव स्वतन्त्रा पड़ोसी देशों में शत्रुता के बीज बोए है। 1948 में गाँधी जी की हत्या, 1951 में भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना के लागू होने एवं तदोपरान्त योजनाबद्ध रूप से प्रगति के उपरान्त भी लोगों की स्वतन्त्र भारत एवं स्वराज्य से जो अपेक्षायें थी, वे अपूर्ण ही रही। 1962 में नेहरू जी के निधन, चीन के आक्रमण 1965 में भारत–पाक युद्ध, शास्त्री जी का निधन, 1971

में फिर भारत–पाक युद्ध, एवं बांग्लादेश की स्वतन्त्रता आदि इस काल की मुख्य राजनैतिक घटनाएँ हैं।

राजनैतिक दृष्टि से भी यह काल मानव एवम् हल–चल का समय था। इसमें मानवता के विनाश की भूमिकाएँ विशाल स्तर पर रची गई एवं उनसे मुक्त होने के प्रयास में समाजवाद प्रतिष्ठित हुआ उसका उत्थान एवं पतन हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन चरम सीमा पर पहुँचकर स्वतन्त्रता प्राप्ति का कारण बना, साम्प्रदायिक घृणा एवं द्वेष का नंगा नाच हुआ। देश विभाजित होकर भारत–पाक में बंटा तथा पाकिस्तान पुनः विभाजित हुआ। भारत को तीन युद्धों, आपात्काल एवं बेरोजगारी आदि का सामना करना पड़ा।

दिनकर का युगचरणत्व इस एक तथ्य से प्रमाणित होता है कि वह समय की मांग के अनुसार अपने को परिवर्तित करते हैं। यह मात्र बाह्य परिवर्तन नहीं रह जाता। वह परिस्थिति व विषय को आत्मसात् करके तदाकार में परिणत होते हैं, यही राजनीतिक प्रभाव की झलक उनके काव्य में मिलती है। उनकी यही राजनीतिक दृष्टिकोण उनकी रचनाओं में कभी राष्ट्रीयता में परिवर्तित हो जाता है, कभी सांस्कृतिकता में, कभी सामाजिकता में परन्तु उन सबके मूल में उनके युग की परिस्थितियाँ थी।

दिनकर की सांस्कृतिक परिस्थतियाँ

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को विश्व की प्राचीनतम् सभ्यता एवं संस्कृति होने का गौरव प्राप्त है। सांस्कृतिक दृष्टि से दिनकर का युग बड़ा रोचक एवं महत्वपूर्ण है। क्योंकि इसमें कई नए पक्ष जुड़े, कतिपय नई विशिष्टताएँ परिलक्षित हुई। वास्तव में यह नवीनता, नूतनता उसके विकास के परिणाम थे, जिसका सूत्रपात 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश क्रांति के भारत में सत्तारूढ़ होने पर भारतीय संस्कृति के संघर्ष के रूप में हो गया था। इसके अतिरिक्त विवेच्यकाल की सामाजिक परिस्थितियों में, राजनैतिक शैक्षणिक कारणों का भी भारतीय परिस्थितियों एवं जनमानस की चितवृति भावनाओं एवं विचारधाराओं पर गहन प्रभाव पड़ा, जो भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में अनेक जीवन आयामों की उत्पत्ति का कारण बने।

इस दौर विशेष की यह विशेषता रही है कि इसने उन चिन्तन धाराओं को आत्मसात् किया है। इस समय की चिन्तन धारा पर आध्यात्मिक संस्कारों का प्रभाव उस समय के राजनैतिक एवम् सामाजिक क्षेत्र को प्रभावित कर रहा था, राष्ट्रीय संग्राम एवं राष्ट्रीय भावना के मूल में भी यही संस्कार वर्तमान थे। इस युग के परिवर्तनों ने यूरोपीय बातों को सहजता से स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उनके मूल में भारतीय संस्कारों की जड़ें थी। केवल भारतीय संस्कृति के प्रति अतीव स्नेह ने उनके मन में यूरोपीय संस्कृति के प्रति विलगाव रखा लेकिन यह मनोभाव यथार्थ एवं वास्तविकता के धरातल पर नहीं टिके थे। अतः यह मनोवृत्ति टिकाऊ न रह सकी। भारतीय संस्कृति की सहजपरण शक्ति ने अपने आपको नवीन एवम् परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल ढाल लिया। सदा की भांति भारतीय संस्कृति सामंजस्य प्रियता उभरकर सामने आई। पूर्व एवम् पश्चिम नवजागरण द्योतन, उनके सांस्कृतिक, सामाजिक आन्दोलनों में प्रस्फुटित एवं प्रस्तुत हुआ और सामंजस्य इस प्रकार के मानसिक समझौते के रूप में प्रकट हुआ कि आध्यात्मिक रूप में तो हम सम्पन्न है परन्तु ऐतिहासिक क्षेत्र में हमें ब्रिटेन से बहुत कुछ सीखना है।[16] इस प्रकार भौतिक क्षेत्रा में ब्रिटेन गुरु बन गया और हमने यूरोपीय संस्कृति का अन्धाधुंध अनुकरण करना शुरु पर दिया स्वयं हम यूरोपीय संस्कृति के रंग में रंग गए। यह प्रक्रिया आज निरन्तर रूप से जारी है। अब तो संचार संसाधनों, तीवग्रामी यातायात के साधनों, विश्वव्यापी प्रचार माध्यमों के प्रसार एवम् राष्ट्र के बीच बढ़ती आत्मनिर्भरता ने विश्व को संकुचित कर दिया है। यद्यपि मानव के विभिन्न सम्प्रदायों के बीच के सम्पर्क बढे हैं तथा उनको एक दूसरे को निकटता से जानने का अवसर मिला है इससे भी समस्त विश्व में मानवतावादी विचारधारा एवम् समस्त मानव समाज के एक होने 'ब्रह्म कुटुम्बकम्' की भावना बलवती हुई है। आज का मानव अपने को किसी नगर प्रान्त, प्रदेश या राष्ट्र का नागरिक नहीं, अपितु विश्व–नागरिक मानता है। भारत के सन्दर्भ में भी यह सत्य है। संस्कृति मानववादी होती है। इसमें उदारवाद और आदर्शवाद का पुट अधिक होता है। आधुनिक भारतीय संस्कृति पर अन्य संस्कृतियों का भी अक्षुण प्रभाव पड़ा है।

निष्कर्षतः दिनकर का युग सांस्कृतिक जागरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है। इस युग में बाह्य संस्कृतियों के कारण एवं उनसे उत्पन्न नवीन विचारधारा एवम् दर्शनों का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव पड़ा। सदा की शान्ति भारतीय संस्कृति ने उन संस्कारों का जो भारतीय परिस्थितियों, जनमानस की चितवृति एवं मनोभावों को उचित लगे, उन्हें आत्मसात् कर नवीन एवम् प्राचीन पूर्व एवं पश्चिम का अमृतपूर्व सांस्कृतिक सामंजस्य स्थापित कर दिया। 'संस्कृति के चार अध्याय' कृति दिनकर की सांस्कृतिक प्रेम की उपज है और निसंदेह यह उस युग की सांस्कृतिक परिस्थितियों की देन थी।

संदर्भ सूची

1. श्यामसुंदरदास, ''हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण'', पृ0–38; मथुरा–साहित्य संगम, 1963)।
2. सावित्री सिन्हा ''युग–चरण दिनकर'' दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाऊस 1963, पृ0–2.)
3. आचार्य रामचन्द्रशुक्ल, ''हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास चतुदर्श भाग'', पृ0–37; काशीः नागरी प्रचारिणी सभा)।
4. आनन्द दीक्षित ''मैथिलीशरण गुप्त'', पृ0–85 इलाहाबादः स्मृति प्रकाशन, 1972)।
5. आनन्द दीक्षित ''मैथिलीशरण गुप्त'', पृ0–85; इलाहाबादः स्मृति प्रकाशन, 1972)।
6. आनन्द दीक्षित ''मैथिलीशरण गुप्त'' पृ0 110 इलाहाबादः स्मृति प्रकाशन, 1972)।
7. कमलकान्त पाठक, ''मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य'', पृ0–94 ,दिल्लीः रणजीत प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, 1960)।